International Journal of Humanities and Social Science Invention (IJHSSI)
ISSN (Online): 2319 – 7722, ISSN (Print): 2319 – 7714
www.ijhssi.org ||Volume 01 Issue 1 || December 2012 || PP 82-86

भारत की प्रमुख चित्र शैलियों का क्रमिक विकास तथा शास्त्रीय अवधारणा में रेखीय संरचना– संयोजन एवं महत्व

डॉ. मनीषा चौबीसा
राजकीय मीरा कन्या महाविद्यालय, उदयपुर

भारत कला व संस्कृति का देश रहा है जिसमें चित्रकला मूर्तिकला, स्थापत्य, नृत्य एवं संगीत आदि सभी ललित कलाओं को सम्मिलित किया गया है जो अपने माधुर्य, सौंदर्य तथा सजीवता के कारण श्रेष्ठ कलाओं के रूप में स्वीकार की जाती है। इन सभी कलाओं में चित्रकला की प्रतिष्ठता अन्नतम् बतलाई गई है। चित्रकला सर्वोत्कृष्ट कला है तथा धर्म, अर्थ, मोक्ष दायिनी है, अतः प्रत्येक मंगल कार्य में चित्रकला का होना शुभप्रद माना गया है। चित्रकला का प्रचलन आदि काल से चला आ रहा है। सर्वप्रथम गुफाओं में निवास करने वाले आदि मानव ने गुफाओं की दीवारों पर चित्रण करके सीधी, सरल तकनीक में अपनी मनोदशा को व्यक्त किया। चित्रकला के विकास की कहानी हमारे सम्मुख मानव विकास कि कहानी को भी प्रकट करती है। विभिन्न उपादानों के द्वारा जीवन के सार्वजनिक, सर्वव्यापी सौंदर्य और प्रकृति का सजीव चित्रण करके विश्व कला में चित्रकला को साकार रूप प्रदान किया है। यहीं कारण है कि चित्रकला प्रत्येक स्थान पर भिन्न रुप में निरन्तर विकसित हुई और उस स्थान की विशेषताएं उसमें निहित रही। यह कलाएँ पीढ़ी–दर–पीढ़ी विरासत के रूप में निरन्तर गतिशील रही अतः प्रमुख चित्रशैलियों के रेखा संयोजन में इनका महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है।

मुख्य शब्द– प्राचीन चित्रशैली,रेखांकन,कला,संस्कृति,परम्परा

भारतीय कला के विकास का प्रमाण प्रागैतिहासिक काल से माना गया है। आदिकालीन कला का अर्थ उसकी आदिम अवस्था से न लगाकर उसकी सरलता, अकृतिमता तथा प्रारम्भिक प्रेरणा से लगाया जाए तो इस काल की कला के महत्व का आभास होता है तथा संस्कृति से इसके गहरे सम्बन्ध का पता भी चलता है।

प्रागैतिहासिक काल को अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से पुरापाषण युग, मध्यपाषाण युग और उत्तरपाषाण युग में विभाजित किया गया है।

प्रागैतिहासिक काल – शिकार व प्रतीक चिन्हों के आधार पर इस काल को लगभग 30,000 से 10,000 ई.पू. तक का माना गया है, जिसके उद्भव एवं विकास को मात्र अनुमान के आधार पर सिद्ध करने का प्रयास किया गया है। इसके कोई निश्चित प्रमाण प्राप्त नहीं हो पाये हैं। इसके प्रमुख केन्द्रों में मुख्यतः मध्यप्रदेश के पंचमढी–होशंगाबाद, भीमबेटका, मन्दसौर, सिंघमपुर आदि स्थानों पर गुफाओं में चित्र पाए गये, जिसे भारतीय चित्रकला का प्रारम्भिक रेखांकित स्वरूप माना जा सकता है। इसी प्रकार उत्तर प्रदेश में मिर्जापुर, मानिकपुर तथा बिहार में चक्रधरपुर में भी शैलचित्र पाये गये हैं। दक्षिण भारत में बेलारी तथा रायपुर में भी प्रागैतिहासिक कला के अवशेष मिले हैं। इससे स्पष्ट है कि यह कला सम्पूर्ण भारत में फैली हुई थी और जहॉ कहीं भी गुफा–मानव रहा करते थे, वहीं गुफाओं की दिवारों पर रेखाचित्र प्राप्त हुए हैं।

इसी प्रकार **सिन्धुघाटी काल**– 3000 ई. पू.–2000 ई. पू. तक का माना जाता है। यह सभ्यता तत्कालीन संस्कृति की परिचायक है जिसमें उत्तर भारत में ताम्बे का प्रयोग तथा दक्षिण भारत में लोहे का प्रयोग होता था। इसके उदाहरण सिन्ध एवं बिलोचिस्तान में प्राप्त हुए हैं। यहॉ खुदाई में प्राप्त मृद भाण्डों पर अर्ध–चन्द्राकार व तिरछी रेखाओं का अंकन एवं आलेखन है, जिसे यहॉ भाण्डा लेख कहा जाता था। इन अलंकरणों में टेड़ी–मेड़ी तथा लहरदार रेखाएं, तिकोने ज्यामितीय आकार, मछली, मोर, तथा शिकारी अंकित हैं। यहाँ लाल मिट्टी की पकाई हुई ईटें और भाण्डों पर कॉच की ओक भी की जाती थी। साथ ही एक इन्च मोटी वर्गाकार अथवा गोल ताम्र मुद्राऍ भी सिन्धु घाटी की देन हैं।

सिन्धु घाटी के पश्चात् भारतीय कला इतिहास में **मौर्यकाल** लगभग 300 ई.पू. का है जब भारत में रामायणं, महाभारत जैसे ग्रन्थ रचे गये। यह समय शेषुनाग–नन्दों का था। इस काल के पश्चात चाणक्य नीति के परिणाम स्वरुप मौर्य साम्राज्य की स्थापना हुई। इस समय मौर्य वंशजों ने अनेक कलात्मक स्तम्भ, स्तुप, चित्र बनवायें। यह चित्र रामगढ़ की पहाड़ियों के बीच "जोगीमारा" गुफाओं में पाये गये जिसमें चित्रकला के अनेक उदाहरण देखे जा सकते हैं। इनमें राम–सीता, लक्ष्मण, वरुण देव और नर्तकियों के चित्र हैं, जिनमें लाल रंग की पृष्ठभूमि पर काले रंग का रेखांकन हैं।

मौर्य काल के बाद **शुंग तथा कुषाण** काल में कला का प्रचार बौद्ध धर्म के माध्यम से हुआ। इस समय कलात्मक कार्यों को अधिक प्रोत्साहन मिला। इस युग की सबसे बड़ी देन सॉची का स्तुप और सारनाथ का बौद्ध रुप तथागत की मूर्ति है। अमरावती की तक्षण कला भी इसी काल की है अतः भारतीय कला इतिहास में इसका महत्वपूर्ण स्थान है।

इसके पश्चात् **गुप्त काल** में भारतीय चित्रकला का द्वितीय उत्थान रहा, जो पांचवी शताब्दी तक अपने चर्मोत्कर्ष पर था। इसमें देव तथा नाग शैलियों के प्रतिनिधि चित्रकारों का उल्लेख तथा रेखीय अभिव्यंजना को व्यक्त किया गया था। पहली दूसरी शताब्दी में बौद्ध धर्म ने सम्पूर्ण भारत पर अपना आधिपत्य स्थापित किया जिसमें रेखांकन कला ने अपना अप्रतिम उदाहरण अजन्ता के भित्ति चित्रों के रूप में प्रस्तुत कर सम्पूर्ण विश्व में भारतीय कला शैली को प्रतिस्थापित कर दिया। बौद्ध की जातक कथाओं से आरम्भ, यह चित्र शैली विश्व में अपने स्वर्णिम स्वरूप के लिए आज भी अपना स्थान रखती है। सातवीं शताब्दी में पश्चिम भारतीय शैली का प्रमुख चित्रकार श्रृंगधर के भीनमाल में कलाकार्य करने के उल्लेख प्राप्त हुए हैं। इसी प्रकार यक्ष शैली में लामा तारानाथ प्रमुख प्रतिनिधि कलाकार रहे, जिनके द्वारा बनाई गई कलाकृतियों में तत्तकालीन रेखीय परम्परा की झलक दिखायी देती है ।

भारतीय कला का वास्तविक स्वरूप **मध्यकाल** रहा इसमें 9 वीं से 11 वीं शताब्दी तक जैन या अपभ्रंश शैली ने भारतीय चित्रकला को एक नवीन अध्याय प्रदान किया, जिसमें जैन धर्म के आदर्शों और कलागत सिद्धान्तों का खुलकर पालन किया गया। यह शैली भारत की प्राचीनतम शैली है, जिसका आदि स्वरूप सिन्धु घाटी और वेद संस्कृति से जुड़ा है। परन्तु ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर इस शैली का उद्भव सित्तलवासन की गुफाओं के समय हुआ जिसे राजा महेन्द्र द्वारा सातवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में बनाया गया था। यहां ताड़पत्र, कागज एवं पटचित्रों का आधिक्य था, जिसमें निर्मित रेखाओं का अपना अलग लालित्य था। यही रेखाएं मध्ययुगीन भारतीय कला में एक आवश्यक सूत्र उपस्थित करती है।

अजन्ता की गुफा न.1 में स्थित बोधिस्त्व पद्मपाणि अवलोकितेश्वर के चित्र में करूणा के जिस भाव को मात्र एक रेखा से व्यक्त किया गया है, वह विश्व की किसी अन्य चित्रशैली में देखने को नहीं मिलता। ग्रिफिक्स महोदय ने इस विषय में कहा है कि – कारूणि कला और भावुकता की कहानी कहने के कारण ही यह कला विश्व प्रसिद्ध है – फ्लोरेन्स के कलाकार अच्छे चित्र तो बना सकते हैं और वेनिस के कलाकार रंग योजना का श्रेष्ठ प्रदर्शन तो करते हैं परन्तु अजन्ता के समान चित्रों में रेखा द्वारा इससे अच्छी अभिव्यक्ति नही कर सकते। रेखा की विभिन्नता के आधार पर ही इस शैली में से डेढ़ दर्जन से अधिक शैलियॉ निकाली जा सकती हैं। यहाँ की रेखाएं भावपूर्ण एवं भारीपन से युक्त हैं, जिनको कुशलता पूर्वक प्रयोग में लाया गया है। इसी प्रकार अजन्ता का चित्रण विधान सूक्ष्म और अद्भुत है जिसमें चित्रण की रूपरेखा बहुत जोरदार, जानदार एवं लोचदार है। भाव के साथ वास्तविकता को भी ध्यान में रखा गया है। सपाटेदार कोणयुक्त रेखाओं के हल्के से घुमाव के साथ गोलाई तथा उभार दिखाई देता है। ज्यामितिय रेखाओं का उपयोग अधिक हुआ है। अजन्ता की इसी समृद्ध परम्परा का निर्वाह परवर्ती काल में देखा गया, जिसमें उत्तर मध्य काल के 11 वीं से 13 वीं शताब्दी तक ओधनिर्युक्तिवृक्ति 1060 ई में, लक्ष्मी एंव हाथी का रेखांकन, गुजरात के पाटन नगर में भगवती सूत्र की एक प्रति 1062 ई. में, तथा 1100 ई. सिद्धराज जयसिंह के राज्य काल में निशीथचूर्णी चित्रित ग्रंथ हैं।

इनके अतिरिक्त अन्य जैन ग्रन्थों में भी रेखाचित्रों को देखा जा सकता है। कल्पसूत्र 14 वीं शताब्दी का प्रमुख ग्रन्थ माना जाता है, जिसके हाशियों में सुन्दर राग रागिनियों तथा बेल बूटों का अंकन किया गया है। मध्य काल रेखांकन की प्राचीन परम्परा का निर्वाह किया गया है।

मध्यकाल में – **अपभ्रंश शैली** –11वीं से 15वीं शताब्दी तक गुजरात एवं राजस्थान में विकसित हुई वह जैन धर्म से प्रभावित रही। यहॉ ज्ञान भण्डारों में अनेक सचित्र ग्रन्थ संग्रहित हैं। जिनमें बालगोपाल स्तुति, गीत गोविन्द, दुर्गा सप्तशती, रति रहस्य प्रमुख हैं। इसके अतिरिक्त निशीथचूर्णी, काल्काचार्यकथा एवं उत्तराध्ययनसूत्र आदि भी मुख्य हैं। यह सामान्य जन से सम्बन्धित कला रही जिसमें जन–साधारण की भावनाएं सहज रूप में प्रस्तुत होती रही। यही भावनाएं सांस्कृतिक परम्परा का मूर्त रूप है, जो समय और परिस्थिति के अनुसार स्थानीय कलाकारों द्वारा सृजित होकर अनेक माध्यमों से प्रसारित होती रही है। लगभग 9वीं से 12वीं शताब्दी तक पाल शैली मगध और बंगाल में विकसित हुई। इस काल में प्रज्ञापारमिता जैसे सचित्र ताड़ पोथियों कि रचना हुई। इसमें सौन्दर्यनुभूति तथा आत्मिक आनन्द का प्रतिरूप देखने को मिलता है, जिसमें कौशल तो कम है परन्तु कलात्मकता बहुत अधिक है।

अपभ्रंश के समान भारतीय कला में **राजस्थानी शैली** का अपना अलग स्थान है। स्थानीय कलाकारों और राजपूत राजाओं के आश्रय से पल्लवित राजस्थानी कला शैली में मुख्यतः दो प्रकार के धरातल प्रचलित रहे– एक लघु चित्र तथा दूसरे भित्ति चित्र। राजस्थान की चित्रशैली के अध्ययन हेतु इसके सम्पूर्ण भाग को मुख्यतः चार अंचलो में विभाजित करने से विभिन्न शैलियों के मूल स्वरूप का विधिवत विवेचन किया जा सकता है। ये चार भाग है – मेवाड़, मारवाड़, ढूंढ़ार और हाड़ौती है। जिनमें कुछ प्रमुख कला शैलीयॉ – मेवाड़, नाथद्वारा, किशनगढ़, बून्दी, कोटा, बीकानेर, जोधपुर, जयपुर, अलवर आदि हैं। कला समालोचक वाचस्पति गैरोला के अनुसार – "राजस्थान के कलाकारों की देन अनुपम एंव अद्वितीय है। मोहक वातावरण और प्राकृतिक रूप निर्माण के कारण कला एवं काव्य के उद्भव के लिए राजस्थान की धरती स्वभाविक रूप से उपयुक्त रही है। यहाँ की कलाकृतियों में पाया जाने वाला रेखांकन प्रारम्भिक कला के उन पक्षों की याद दिलाता है, जिसमें शास्त्रीयता तथा पारम्परिक मूल्यों का योगदान रहा है। राजस्थान के महलों, मंदिरों, दुर्गों, हवेलियों आदि पर किये गये चित्रण में भी रेखांकन की उसी परम्परिक छटा के दर्शन होते हैं, जिन्हें राजपूत राजाओं के संरक्षण में विकसित होने का अवसर प्राप्त हुआ। इन कलाकारों ने भिति चित्रण का रेखांकन मानवीय अनुभूति को तत्कालीन परिस्थितियों से अवगत कराता है, जिसकी दो प्रमुख पद्वतियॉ प्रचलित रही– एक *"फ्रेस्को"* अथवा

आलागीला पद्वति तथा दूसरी *"सेको"* जिसमें सूखी दीवार पर रेखांकन किया जाता था। इस प्रकार रेखांकन के संदर्भ में कलाकारों ने नवीन आयाम प्रस्तुत किये जिसके माध्यम से शास्त्रगत मूल्यों पर आधारित सुनियोजित चित्रण किया गया।

भारतीय कला में मध्य भारत के **राजस्थानी शैली** के समान ही दक्षिण में 13वीं 14वीं शताब्दी में विजयनगर साम्राज्य में सुल्तानों के राजशाही में चित्रण परम्परा आरम्भ हुई जिस पर अपंभ्रश का प्रभाव था। यहॉ प्रमुख चित्र श्रेणीयों में बीजापुर, गोलकुण्डा तथा अहमदनगर मुख्य केन्द्र रहे। आदिलशाह के समय बीजापुर शैली का विकास हुआ जिस पर इरानी प्रभाव देखा जा सकता है। सघन वनस्पति एवं स्त्री पुरूष पहनावें में इराकी व अपभ्रशं का मिश्रित प्रभाव होने से इस कला शैली की अपनी पहचान बनी। इसी प्रकार कुतुबशाह ने चित्रकला में विशेष रुचि दिखाई तथा कई कलाकारो को आश्रय देकर चित्रण कार्य करवाया।

राजस्थानी के समान **मुगल शैली** ने भी चित्रकला को शास्त्रीय आधार पर अपनाया जिसके अध्ययन से अकबर कालीन चित्रण में बहुविध काल्पनिक एवं कार्यशील रेखाओं को देखा जा सकता है। मुगल कला शैली का आरम्भिक स्वरूप ईरानी कला से मिलता जुलता रहा, परन्तु धीरे–धीरे इस शैली ने भारतीय लोक कला, राजस्थानी कला एवं अजन्ता के रेखांकन को अपनाकर परिष्कृत हुई तथा फली–फूली, अकबर के समय तक यह शैली अपने पूर्ण चरम पर पहुॅच चुकी थी। बादशाह जहॉगीर और शाहंजहॉ ने इसे अग्रेशित किया परन्तु औंरगजेब के शासन काल से इनका पतन प्रारम्भ हो गया और धीरे–धीरे यहॉ के कलाकार अन्य छोटे राजाओं के आश्रय में चले गये।

औरंगजेब व अन्य मुगल शासकों की कला में अरूचि के परिणामस्वरूप हुआ। पहाड़ी शैली का उदय का हुआ औरंगजेब से छिपकर कुछ कलाकार चम्बा, गुलेर आदि स्थानों पर चले गये। वहॉं स्थानीय कलाकारों की सहायता से नवीन पहाड़ी शैली का सूत्रपात हुआ जिसमें घुमावदार एवं लचकदार रेखा की बहुलता देखी जा सकती है। तत्कालीन राजनैतिक परिस्थितियों और विदेशी प्रभाव से भारतीय चित्रकला में एक बार फिर से नवीन अध्याय का आरम्भ हुआ जिससे कम्पनी शैली का प्रादुर्भाव हुआ।

कम्पनी शैली – मुगल, राजस्थानी, पहाड़ी शैली के अवसान के पश्चात् कालांतर में भारतीय कलाकारों ने प्राचीन समरसता और संस्कृति की अनुमोदिनी परम्परागत शैली को नवीन रूप से परिवर्तित कर कलाकृतियों की रचना आरम्भ की। यह शैली "कम्पनी" शैली के रूप में प्रचलित हुई जिसकी तकनीक भले ही नयी थी परन्तु उसका रेखांकन अजन्ता और राजस्थानी कला शैली का अनुशीलन ही था। कम्पनी शैली के चित्र अजन्ता की *"अल्ट्रा माडर्न"* शैली के रूप में अनुकरणीय मानी जा सकती हैं। इसमें राजस्थानी रंग और रेखांकन को अपनाकर मनोभाव व्यक्त किये गये है, जिसे पुनरोत्थान काल की कला कहा जाता है। इसके प्रमुख कलाकार राजा रवि वर्मा रहे, जिन्होनें बंगाली कलम के रूप में भारतीय विषयों को युरोपीयन तकनीक से बनाकर कला को नयी दिशा प्रदान की। इसे अग्रेशित करने में अवनिन्द्रनाथ टैगोर, नंदलाल बसु और यामिनी राय ने प्रमुख योगदान दिया। इसके पश्चात् भारतीय चित्रकला के इतिहास में आधुनिक कला की शुरूआत होती है।

विभिन्न शैलियों में शास्त्रीय अवधारणा एवं रेखीय अभिव्यक्ति –

चित्रकला की विभिन्न शैलियों के विस्तार में प्राचीन शास्त्रों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। भारतीय संस्कृति और मान्यताओं को विद्धानों ने कठिन प्रयासों द्वारा पुराणों एवं ग्रन्थों का अध्ययन कर विवेचित करने का प्रयास किया है। उन्हीं प्राचीन शास्त्रों और आदर्शो को हम अपने रहन–सहन, आचार–विचार, व्यवहार आदि में अपनाते हैं। महाभारत के एक आख्यान में उषा एवं चित्रलेखा की स्वपन चर्चा का वर्णन है, जिसमें राजा अनिरूद्ध के विषय में बताया गया है। इसी का रेखांकन सखी चित्रलेखा द्वारा बनाया गया है। कालिदास के नाटक मालविका अग्निमित्रम् में मालविका एवं अग्निमित्र की प्रेम कहानी का चित्रण भी प्राप्त हुआ है, जिसमें भावाभिव्यंजना सहज एवं मार्मिक है। इसी क्रम में "मेघदूत" में भी चित्रण के विभिन्न प्रमाण प्राप्त होते है जहॉं यक्ष द्वारा चूड़ा पर गेरू से अपनी प्रेयसी की प्रतिकृति बनाने के उल्लेख मिलते है। सातवीं शताब्दी में महाकवि बाण द्वारा उज्जैन के भित्ति चित्रों का उल्लेख किया गया, जिसमें देव, राक्षस, नाग, यक्ष आदि चित्रित हैं। जबकि आठवीं शताब्दी में महाकवि भवभूति ने उत्तररामचरित में भित्ति चित्रों का उल्लेख किया, जिसमें रामायण की कई घटनाओं का चित्रण है। सभी साहित्यों में श्रैष्ठ प्राचीन शास्त्र "विष्णुधर्मोत्तर पुराण" में भित्ति चित्रों के लिए भिन्न–भिन्न रंग योजना एवं विभिन्न धरातलों का उल्लेख भी किया गया है। इस प्रकार प्राचीन शास्त्रों में चित्रकला के कई उल्लेख प्राप्त हुए हैं, जिसमें रेखा प्रधान चित्रों का आधिक्य है। विष्णु धर्मोत्तर पुराण के तृतीय खण्ड में प्रश्न किया गया है, जिसमें कला को श्रेष्ठ बताया गया है।

"कर्तव्यं मनुष्येण, किं कुर्वन् सुखमेघते।"

"अस्मिल्लोके परे चेव केनाप्नोति महत्सुखम्।। 3/1/4 विष्णुधर्मोत्तर पुराण"

भारतीय इतिहास में कला के मर्म को जानने के लिए दो प्रकार की सामग्रियॉ उपलब्ध हैं। प्रथम श्रेणी में प्रागैतिहासिक एवं पुरातैहासिक मानव निर्मित उपकरण, बर्तन, भाण्डे, अभिलेख आदि हैं और दूसरी श्रेणी में वे प्राचीन साहित्य आते हैं, जिनमें कला के विषय में बहुत कुछ लिखा गया है। इसके दो वर्ग है – सामान्य साहित्य एवं विशिष्ठ साहित्य।प्रथम वर्ग को पुनः धार्मिक और लौकिक दो भागों में बांटा गया है। विशिष्ठ साहित्य के अर्न्तगत उन लिपिबद्ध

ग्रन्थों को सम्मलित किया गया है, जो वास्तु शास्त्र, शिल्प शास्त्र तथा मूर्तिकला से सम्बन्धित हैं। इनमें शिल्पशास्त्र, मानसार, युक्तिकल्पतरू, समरागण सूत्र धार, शिवत्वरत्नाकर, मयमत, मानसोल्लास, आदि सम्मलित हैं। जबकि धार्मिक साहित्य में वैदिक साहित्य, संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद् धर्मसूत्र, मतस्य पुराण आदि का विशेष महत्त्व है, जिनमें चित्रकला के विषय में महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त होती है। साथ ही चित्रण में रेखा की प्रधानता का उल्लेख भी पाया जाता है, जबकि लौकिक कथाओं, बुद्ध की जातक कथाओं, चैत्य और विहार गुफाएं सांची, भरहुत तथा अमरावती से प्राप्त जीवन दर्शन प्राप्ति का वर्णन है, जिसमें रेखाओं के विभिन्न प्रकार तथा स्वरूपों को स्पष्ट तथा प्रासांगिक रूप में अपनाया गया है।

" चित्रसूत्रविधमेन देवतार्चा विनिर्मिताय।। (3/1/7) विष्णु धर्मोत्तरपुराण "

अर्थात् चित्रसूत्र में मात्र चित्रकला का ही अध्ययन नहीं है बल्कि समस्त ललित कलाओं का विवेचन है।

इसी प्रकार जैन साहित्य आचारागसूत्र, भगवती सूत्र, उत्तराध्यायन सूत्र आदि में जैन धर्म प्रवर्तकों के जीवन की घटनाओं का वर्णन चित्रण के माध्यम से करने की प्रथा रही है। इसके अतिरिक्त लौकिक साहित्य, महाभारत, रामायण, प्रसहन, नाटक, काव्य, व्याकरण, ऐतिहासिक ग्रन्थ आदि में चित्रकला को आधारभूत स्वरूप में अपनाया गया है, जिससे उसमें कला की प्रमाणिकता सिद्ध हो चुकी है। यहाँ साहित्य सामग्रीयों में उन विदेशी ग्रन्थों का उल्लेख भी प्रासंगिक है, जो प्राचीन भारतीय स्थापत्य, मूर्ति और चित्रकला के विषय में समुचित जानकारी रखते हैं। इस श्रेणी में मेगस्थनीज एवं एरियन के ग्रन्थ, फाहियान तथा अन्य चीनी साहित्य सम्मलित है, जो समय–समय पर भारत आते रहे और यहां की कला व संस्कृति से प्रभावित होकर उसका प्रचार–प्रसार किया।

तीसरी चौथी शताब्दी पूर्व पाली में लिखा गया बौद्ध ग्रन्थ विनयपिटक में, राजा प्रसेनजित के रेखांकित चित्रागार का वर्णन है। इसी प्रकार रामायण और महाभारत में भी महलों और मंदिरों पर रेखाओं के अंलकरण का उल्लेख प्राप्त हुआ है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में भी रेखांकन के विषय में कहा गया है। श्री हर्ष के नैषध–चरित में विभिन्न वर्णो में अलंकृत चित्रण से घर को सुशोभित किया जाना श्रेष्ठ माना है। भवभूति ने भी तीनों प्रकार के कलाओं का वर्णन करते हुए कहा कि वास्तव में सौंदर्यनुभूति के क्षैत्र में चित्रकला को अन्य शिल्पों से उत्तम माना जाता है।

"चित्रगतायामस्तां कांतिविसवादशकि में हृदयम्।
सम्पति शिथिलसमाधिमन्य येनेयमालिखिता"।। कालिदास–मालविका–अग्नि–मित्रं 38/2/2

चित्र सिद्धान्त के इन सुक्ष्म विवेचनों से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्राचीन भारत में चित्रकला की अत्याधिक प्रगति हो चुकी थी और इसका विधिवत् शास्त्रीयकरण भी हो गया था। भारतीय चित्रकला वर्तना, प्रकाश एवं छाया से भी पूर्णतः परिचित थी। इसका वर्णन 11 वीं शताब्दी में राजा भोज ने अपने "समरांगण सूत्र" में किया है। भारतीय चित्रकार रेखाएं खीचने और आकृति बनाने में सिद्धहस्त थे और चित्रण के सभी तत्त्वों प्रमाण, क्षय वृद्धि आदि का भलीभांति उपयोग करते थे। इस कला शैली का सर्वोत्तम विकास अजन्ता के भित्ति चित्रों में परिलक्षित होता है। ईसा की प्रथम शताब्दी से सात वीं शताब्दी तक अत्यन्त दक्ष चित्रकारों द्वारा अंग विन्यास, भाव एवं मुद्राओं को कोमलता, मधुरता एवं संवाहि रेखाओं द्वारा बडी सुन्दरता से चित्रित किया गया जिसमें प्रशस्त एवं नियमित रेखांकन उनकी विशेषता रही।

भारतीय चित्र शैलियों के संयोजन में मुगल के पश्चात् पहाड़ी कला में रेखा की कोमलता तथा बारीकि देखी जा सकती है जिसने राजस्थानी कला के विभिन्न स्वरूपों से भावभिव्यक्ति की प्रेरणा प्राप्त की। मुगल दरबार से आये इन कलाकारों ने हिमालय के विभिन्न स्थानों पर रहकर स्थानीय कलाकारों और परम्परागत मिश्रित शैली में काम करना प्रारम्भ किया, जिससे बसोहली एवं कॉगड़ा शैली कहा जाता है। इस शैली में रेखांकन की बारिकी एवं अभिव्यक्ति का सहज सामर्थ्य था। रेखाओं के सुकुमार संयोजन, भाव संवेदना तथा लयात्मकता और ऐन्द्रिय सुख एवं आध्यात्मिकता का समावेश कला की विशेषता रही। यहां के कलाकारों ने जीवन के सारतत्त्व में दमकते रंगो एवं स्वतन्त्र रेखांकन की परम्परा को एकबार पुनः जीवित किया।प्राचीन भारतीय परम्परा एवं शास्त्रीय अवधारणा पर आधारित कला ने अभिव्यक्ति की क्षमता पर प्रश्न चिन्ह् लगा दिया, जिसके परिणामस्वरूप मिश्रित कला शैली का जन्म हुआ जिसमें आन्तरिक अभिव्यक्ति, व्यक्तिगत आनन्द एवं स्वतन्त्र विचारों की प्रोत्साहन प्राप्त हुआ। यही से भारतीय कला में आधुनिकता का प्रारम्भ हुआ और वही प्राचीन परम्परागत कला आधुनिक कला के लिए प्रेरणा स्रोत बन गई।

सन्दर्भ ग्रंथ–

1. रामनाथ– मध्यकालीन कलाएं एवं उनका विकास, जयपुर
2. रॉय कृष्ण दास– भारतीय चित्रकला, भारत दर्पण ग्रंथ माला, इलाहाबाद
3. भूपेन्द्रनाथ दत्ता– इण्डियन आर्ट इन रीलेशन टू कल्चर, कलकत्ता
4. प्रेमचन्द गोस्वामी– भारतीय कला के विविध स्वरूप,पंचशील प्रकाशन, जयपुर
5. महेश चन्द्र जोशी– युगयुगीन भारतीय कला जोधपुर
6. जासवानी के.के.– कला की परख दिल्ली
7. कर्तव्यं मनुष्येण, किं कुर्वन् सुखमेघते।
   अस्मिल्लोके परे चेव केनाप्नोति महत्सुखम्।। 3/1/4 विष्णुधर्मोत्तर पुराण
8. चित्रसूत्रविधमेन देवतार्चा विनिर्मिताय।। (3/1/7) विष्णु धर्मोत्तरपुराण

अर्थात् चित्रसूत्र में मात्र चित्रकला का ही अध्ययन नहीं है बल्कि समस्त ललित कलाओं का विवेचन है।

9. ''चित्रगतायामस्तां कांतिविसवादशकि में हृदयम्।
सम्पति शिथिलसमाधिमन्य येनेयमालिखिता"।।[1] कालिदास–मालविका–अग्नि–मित्रं 38/2/2

10. अविनाश बहादूर वर्मा– भारतीय चित्रकला का इतिहास, बरेली

11. प्रेमचन्द गोस्वामी– भारतीय कला के विविध स्वरूप, जयपुर
12. गिर्राज किशोर अग्रवाल, कला निबन्ध, अलीगढ